वीर संवत २४९२, फागुन शुक्ल ५, शुक्रवार

दि.२५-२-१९६६, गाथा-९, १०, ११, प्रवचन नं.-३६

चौथी ढाल चलती है, देखो ! 'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला' चलती है। 'छहढाला' में चौथी ढाला (है)। हिन्दी में नौंवी गाथा हो गई, हिन्दी में, हाँ ! गुजराती में नौ है। उसके अन्तिम के थोड़े बोल हैं, नौंवीं (गाथा का भावार्थ का) अन्तिम थोड़े बोल हैं, उसके साथ संबन्ध करते हैं। आज हिन्दीवाले आये हैं। नौंवी है न ? मूल श्लोक। चौथी (ढाल का) नौंवा (श्लोक)। नौंवी के साथ संबन्ध है।

पुण्य-पाप फलमाहिं, हरख विलखौ मत भाई;
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई।
लाख बातकी बात यही, निश्चर उर लाओ;
तोरि सकल जग दंद-फंद, नित आतम ध्याओ।।९।।

क्या कहा ? इसमें सार लिया है। '**पुण्य-पाप फलमाहिं, हरख विलखौ मत भाई;**' पूर्व का जो पुण्य और पाप का जो बन्धन हुआ है, उसका जो अनुकूल-प्रतिकूल संयोग मिले, उसमें हर्ष और खेद नहीं करना। समझ में आया ? '**पुण्य-पाप फलमाहिं, हरख विलखौ मत भाई;**' उसमें छह बोल आ गये हैं। शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप का भाव, उसमें भी पुण्य ठीक और पाप अठीक नहीं मानना और पुण्य-पाप का बन्धन हो, उसमें भी पुण्य बंधे वह ठीक और पाप बंधे वह अठीक, ऐसा नहीं मानना। दोनों बन्धन हैं और पुण्य-पाप के फल में अनुकूल-प्रतिकूल सामग्री मिले उसमें भी हर्ष-शोक करना नहीं।

'**यह पुद्गल परजाय,...**' वह तो पुद्गल की अवस्था है। '**उपजि विनसै फिर थाई।**' पूर्व के पुण्य के कारण पुद्गल मिले, फिर बिखर जाये, फिर से मिले। वह तो पुद्गल की

अवस्था है। '**लाख बातकी बात यही, निश्चय उर लाओ;**' सार में सार कहते हैं। '**तोरि सकल जग दंद-फंद, नित आतम ध्याओ।**' देखो ! सम्यग्ज्ञान की बात है। आत्मा, पुण्य-पाप का विकल्प जो राग है, उससे भिन्न अपना स्वरूप है। ऐसा भेदज्ञान करके अपने आत्मस्वरूप का ध्यान करना। सारे वीतराग मार्ग का वह सार है। '**लाख बात की बात यही,**' शास्त्र में करोड बात, लाख बात कही हो; एक '**निश्चय उर लाओ**' आत्मा अखण्ड शुद्ध चिदानन्दमूर्ति है। शरीर, कर्म, अजीव से भिन्न है और पुण्य-पाप का भाव जो आस्रवतत्तव है, उससे भी भिन्न है। समझ में आया ? आस्रव से भिन्न है, अजीव से भिन्न है। आस्रव से भिन्न है क्योंकि सात तत्त्व हैं या नहीं ? पुण्य-पाप का भाव है वह तो आस्रवतत्त्व है। दोनों आस्रव हैं और शरीर, कर्म तो अजीवतत्त्व हैं। अजीवतत्त्व से और आस्रवतत्त्व से अपना शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप, जैसा सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव ने शुद्ध आत्मा देखा है, ऐसे शुद्ध आत्मा की दृष्टि करो।

सारे जैनशासन की सार बात यह है कि, '**तोरि सकल जग दंद-फंद,**' पुण्य-पाप का भाव जग दंद-फंद है। उसकी रुचि छोड़कर, अजीव की रुचि छोड़कर सहजानन्द नित्यानन्द प्रभु आत्मा है, उसकी रुचि करो और राग से भेदज्ञान करके अपना ज्ञान करो। कहो, समझ में आया ? मूल चीज यह है। इस चीज़ के बिना कभी उसको व्रत, नियम और चारित्र होता नहीं। कहते हैं कि, '**नित आतम ध्याओ।**' ऐसा क्यों कहा ? कि, हंमेशा अपना स्वरूप शुभ-अशुभराग और कर्म से भिन्न है, ऐसे स्वरूप की दृष्टि कर। हमेशा-नित्य ऐसी दृष्टि रखो और ऐसे आत्मा में ध्यान लगाओ। वही मोक्ष का मार्ग है और वही संसार का अन्त करने का उपाय है। नौ आ गयी, अब दसवीं। नौंवी गाथा तो विस्तार से हो गई है।

अब दसवीं (गाथा)। ऐसा सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होने के बाद उसे सम्यक्चारित्र होता है। दसवीं गाथा है, भैया ! है उसमें ? १०८ पन्ना है। यह चौथी ढाल चलती है। है न ?

सम्यक्चारित्र का समय और भेद तथा अहिंसाणुव्रत और सत्याणुव्रत का लक्षण

सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरि दिढ़ चारित लीजै;
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै।
त्रसहिंसाको त्याग, वृथा थावर न सँहारै;
पर-वधकार कठोर निंद्य नहिं वयन उचारै।।१०।।

अन्वयार्थ :- (सम्यग्ज्ञानी) सम्यग्ज्ञानी (होय) होकर (बहुरि) फिर (दिढ़) दृढ़ (चारित) सम्यक्चारित्र (लीजे) पालन करना चाहिए; (तसु) उसके (उस सम्यक्चारित्रके) (एकदेश) एक देश (अरु) और (सकलदेश) सर्वदेश (ऐसे दो) (भेद) भेद (कहीजै) कहे गये हैं। (उनमें) (त्रसहिंसाको) त्रस जीवों की हिंसा का (त्याग) त्याग करना और (वृथा) बिना कारण (थावर) स्थावर जीवों का (न सँहारै) घात न करना (वह अहिंसा-अणुव्रत कहलाता है) (पर-वधकार) दूसरों को दुःखदायक, (कठोर) (और) (निंद्य) निंद्यनीय (वयन) वचन (नहिं उचारै) न बोलना (वह सत्य-अणुव्रत कहलाता है)।

भावार्थ :- सम्यग्ज्ञान प्राप्त करके सम्यक्चारित्र प्रकट करना चाहिए। उस सम्यक्चारित्र के दो भेद हैं - (१) एकदेश (अणु, देश, स्थूल) चारित्र और (२) सर्वदेश (सकल, महा,सूक्ष्म) चारित्र। उनमें सकलचारित्र का पालन मुनिराज करते हैं और देशचारित्र का पालन श्रावक करते हैं। इस चौथी ढाल में देशचारित्र का वर्णन किया गया है। सकलचारित्र का वर्णन छठवीं ढाल में किया जायेगा। त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा का सर्वथा त्याग करके निष्प्रयोजन स्थावरजीवों का घा न करना सो * अहिंसा अणुव्रत हैं। दूसरे के प्राणों को घातक, कठोर तथा निंद्यनीय वचन न बोलना (तथा दूसरों से न बुलवाना, न अनुमोदना सो सत्य-अणुव्रत है)।

---

* टिप्पणी :- (१) अहिंसाणुव्रत का धारण करनेवाला जीव 'यह जीव घात करने योग्य है, मैं इसे मारूँ' इसप्रकार संकल्पसहित किसी त्रसजीव की संकल्पी हिंसा नहीं करता; किन्तु इस व्रत का धारी आरम्भी, उद्योगिनी तथा विरोधीनी हिंसा का त्यागी नहीं होता।

सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरि दिढ़ चारित लीजै;
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै।
त्रसहिंसाको त्याग, वृथा थावर न सँहारै;
पर-वधकार कठोर निंद्य नहिं वयन उचारै॥१०॥

क्या कहते हैं ? देखो, शब्दार्थ। '**सम्यग्ज्ञानी होकर फिर...**' शब्दारथ-अन्वयार्थ। पहले सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान न हुआ हो तो उसे व्रत और चारित्र कभी होता नहीं। सम्यग्दर्शन, आत्मा (का) अनुभव (हुआ हो); राग, शरीर, कर्म से भिन्न शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप सिद्धस्वरूप - ऐसा अपना पवित्र भगवान आत्मा दृष्टि में पुण्य-पाप के राग से भिन्न करके लिया न हो तो सम्यग्दर्शन होता नहीं। और शुभाशुभराग का ज्ञान छोड़कर, भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसका ज्ञान करो, बाद में सम्यक्चारित्र धारण करो।

मुमुक्षु :- ... चारित्र हो जाये।

उत्तर :- चारित्र हो जाये। चारित्र है ही नहीं।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान बिना जितना, व्रत, नियम, तप आदि करते हैं, वह तो बालतप और बालव्रत हैं। समझ में आया ? वह सच्चा व्रत है नहीं। अपना स्वरूपभगवान शुद्ध, जिसमें स्थिर होने से शांति मिले... समझ में आया ? भगवान सच्चिदानन्द शुद्धस्वरूप परमानन्द अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य - ऐसे अनन्त चतुष्टय संपन्न अपना निज परमात्मस्वरूप है। उसका दर्शन, सम्यक् अनुभव करके प्रकट करना और उसका सम्यग्ज्ञान का आराधन करना, ऐसा होने के बाद सम्यक्चारित्र धारण करना। समझ में आया ? उसके बिना चारित्र सच्चा होता नहीं।

यह सम्यक्चारित्र का समय बताते हैं। काल क्या है ? सम्यक्चारित्र का समय क्या ? कि, सम्यग्दर्शन, ज्ञान होने के बाद चारित्र का काल है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान हुआ नहीं, अपना आनन्दकन्द ज्ञाता-दृष्टा मैं हूँ, राग उत्पन्न होता है, उसका भी मैं कर्ता नहीं। समझ में आया ? राग विकल्प उठता है लेकिन (वह) विकार है, मैं कर्ता नहीं, जड़ की क्रिया मेरी नहीं - ऐसा

अपना शुद्धस्वरूप का दर्शन-ज्ञान हुए बिना व्रत, तप, क्रियाकाण्ड सच्चा होता नहीं।

कहते हैं, '**सम्यग्ज्ञान होकर (बहुरि)...**' बहुरि अर्थात् '**फिर...**' बाद में। '**दृढ सम्यक्चारित्र का पालन करना चाहिए;...**' देखो ! 'दृढ' शब्द लगाया है। भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप की दृष्टि हुई और शुद्ध अपने ज्ञान का बोध अन्तर भेदज्ञान हुआ, बाद में स्वरूप में स्थिर होने को दृढ चारित्र अंगीकार करना। समझ में आया ? चारित्र बिना कभी मुक्ति होती नहीं।

मुमुक्षु :- दृढ चारित्र लेता...

उत्तर :- दृढ़ अर्थात् ऐसे लेना कि बाद में च्यूत न हो, ऐसा कहते हैं। क्या (कहा) ? ऐसा चारित्र लेना कि, फिर नीचे गिरे नहीं, ऐसा कहते हैं। उपर चढ़ता जाये, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा अपनी दृष्टि में आया तो उसमें अन्तर में स्थिर होने को सम्यग्ज्ञान होने के बाद चारित्र धारण करना। परन्तु कैसा ? '**दृढ सम्यक्चारित्र का पालन करना चाहिए; उसके...**' अर्थात् '**सम्यक्चारित्र के एकदेश और सर्वदेश (ऐसे दो) भेद...**' हैं। सम्यक्चारित्र के दो भेद (हैं)। सम्यग्दर्शन-ज्ञान (होने के बाद) सम्यक्चारित्र के दो भेद हैं। एकदेश श्रावक का, सर्वदेश मुनि का। ऐसे दो (भेद) '**कहे गये हैं।**'

उसमें भी पहले अहिंसा अणुव्रत में '**त्रस जीवों की हिंसा का त्याग करना...**' श्रावक को अपने स्वरूप का भान होने के बाद चारित्र में देश अणुव्रत है त्रस हिंसा का त्याग होना चाहिए। संकल्प से मैं त्रस को मारुं, संकल्प से मैं दोईन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चौईन्द्रिय, पंचेन्द्रिय को मैं संकल्प (करके) मारुँ, ऐसा संकल्प श्रावक को पंचम गुणस्थान में अणुव्रत में होता नहीं। समझ में आया ? अन्दर स्पष्टीकरण आयेगा।

'**और बिना कारण स्थावर जीवों का घात न करना...**' स्थावर जीव (मे भी) एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चोइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय हैं। स्थावर में भी पृथ्वीकाय, जलकाय, वायुकाय, अग्निकाय और वनस्पतिकाय जीव हैं। एक पृथ्वी के इतने कण में असंख्य पृथ्वीकाय के जीव हैं। जलकाय के एक बिन्दु में असंख्य अपकाय के जीव हैं। समझ में आया ? वायु में भी थोड़े वायु में असंख्य जीव हैं। हरितकाय में नींवपत्ता आदि में एक पत्ते में

भी असंख्य जीव हैं। एक शरीर में एक (जीव) है। और निगोद आलु, कंदमूल, काई, फूग में एक शरीर में अनन्त जीव हैं। उनकी हिंसा वृथा न करनी। गृहस्थाश्रम है, प्रयोजन है तो हिंसा आ जाती है। परन्तु अनर्थ-बिना कारण त्रसहिंसा छोडी वैसे ही स्थावर की हिंसा भी बिना कारण नहीं करनी। समझ में आया ? '**घात न करना (वह अहिंसा-अणुव्रत कहलाता है)।**' यह अहिंसा अणुव्रत श्रावक का पहला अणुव्रत (है)।

'**(पर-वधकार) दूसरों को दुःखदायक, कठोर...**' अब सत्य अणुव्रत की बात चलती है। सत्य अणुव्रत। सम्यग्दृष्टि श्रावक को पाँच अणुव्रत में दूसरा सत्य अणुव्रत किसको कहते हैं, उसकी व्याख्या है। '**दूसरों को दुःखदायक, कठोर, निंद्यनीय वचन न बोलना...**' समझ में आया ? पंचम गुणस्थान(वर्ती) श्रावक को सर्वार्थसिद्धि के देव से भी शांति बढ गई है। क्या कहा ? सर्वार्थसिद्धि के देव को तो अविरत सम्यग्दर्शन है। उसको अणुव्रत आदि पंचम गुणस्थान नहीं है। जिसको अन्तर में आत्मज्ञान सम्यग्दर्शनपूर्वक स्वरूप की स्थिरता की शांति बढ गई है, दो कषाय का नाश हो गया। सर्वार्थसिद्धि के देव को तो एक अनन्तानुबंधी का ही अभाव हुआ और श्रावक को आत्मा के अनुभवपूर्वक अनन्तानुबंधी और प्रत्याख्यानवरणीय दोनों का अभाव हो गया है। समझ में आया ? भैया ! दो का अभाव हुआ है। अन्तर में कषाय का अभाव होना उसका नाम एकदेश चारित्र है।

अन्तर में अनुभव करके अनन्तानुबंधी का तो अभाव कर दिया है, बाद में स्वरूप में स्थिरता (करके) इतनी शांति आई कि जो सर्वार्थसिद्धि के देव को नहीं (है)। ऐसी अंतर्मुख में आंशिक शांति दूसरे कषाय का त्याग करके अन्दर स्थिरता हुई तो सर्वार्थसिद्ध के देव से भी पंचम गुणस्थानवाला बढ गया। ज्यादा गुणस्थान है। अन्तर की बात है, हाँ ! बाहर का अकेला क्रियाकाण्ड नहीं। अन्तर आत्मा का अनुभव, सम्यग्दर्शन हुआ है और भेदज्ञान - राग से भिन्न हुआ है, बाद में स्वरूप में स्थिर (होकर) दूसरे कषाय अप्रत्याख्यानावरणीय का नाश करके शांति... शांति... शांति... (का वेदन करते हैं)। दूसरे कषाय का अभाव करके अकषाय शुद्धपरिणति (प्रकट हुई है)। अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यानावरणीय का अभाव होकर शुद्ध शांति की परिणति प्रकट हुई है। उसका नाम पंचम गुणस्थान का श्रावक कहने में आता है, उसको अहिंसा अणुव्रत में त्रस का घात नहीं होता और बिना कारण स्थावर की हिंसा वह नहीं

करते।

सत्य (अणुव्रत में) दूसरों को दु:खदायक हो, प्राणघात हो जाये, कठोर हो, निंद्यनीय हो – ऐसे वचन श्रावक को पंचम गुणस्थान में, सर्वार्थसिद्धि के देव से भी जिसकी शांति बढ गई है। शांति बढी है न ? अन्दर दो कषाय का अभाव (होकर) शांति बढी है। इस कारण से गुणस्थान है। उसके अणुव्रत में जो विकल्प उठते हैं, उसमें कठोर, दु:खदायक, निंद्यनीय वचन बोलने का भाव होता ही नहीं। समझ में आया ?

भावार्थ :- 'सम्यग्ज्ञान प्राप्त करके...' सम्यग्ज्ञान, हाँ ! सम्यग्दर्शन तो पहले प्राप्त किया। वह तो कल पहली बात आ गई। बाद में अन्तर अनुभव में समायग्ज्ञान का आराधन किया। **'सम्यक्चारित्र प्रकट करना चाहिए। उस सम्यक्चारित्र के दो भेद हैं - (१) एकदेश (अणु, देश, स्थूल)...'** स्थूल है न ? श्रावक का व्रत तो स्थूल है। छट्ठे-सातवें गुणस्थान में बिराजमान हैं, उनको महाव्रत है। यह तो अंश, थोड़ा है। **'और (२) सर्वदेश (सकल, महा, सूक्ष्म) चारित्र...'** मुनि को तो सकलचारित्र, महाचारित्र अथवा सूक्ष्मचारित्र (है)। छठ्ठा-सातवां गुणस्थान। आनन्दकन्द में झुलनेवाले मुनि, भावलिंग शुद्ध चिदानन्द। 'कुन्दकुन्दाचार्य' महाराज, 'अमृतचंद्राचार्य' महाराज संतो महा दिगम्बर अन्तर अनुभव में क्षण में छठ्ठा, क्षण में सप्तम, क्षण में छठ्ठा, क्षण में सप्तम ऐसी मुनि की अवस्था अन्तर में आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द में बहुत लवलीन हैं। उनको सकल चारित्र का पंच महाव्रत का परिणाम होता है। समझ में आया ? उनको सकल चारित्र का पंच महाव्रत का परिणाम होता है। समझ में आया ? उनको अठ्ठाईस मूलगुण का विकल्प होता है।

मुनि को अन्तर अनुभव में आनन्द की दृष्टि होकर सम्यग्ज्ञान आत्मा का आराधन करके, बाद में स्वरूप में तीन कषाय का अभाव करके (लीनता प्रकट हुई है)। श्रावक को दो कषाय का, समकती को एक कषाय-अनन्तानुबन्धी का, श्रावक को दो कषाय और मुनि को तीन कषाय का अभाव (हुआ) है। इतनी वीतरागता अन्दर बढ गई हो। आहा..हा... ! समझ में आया ? यह वीतरागता शांति इतनी बढी है कि, जिसमें पंच महाव्रत और अट्ठाइस मूलगुण के ही विकल्प उठते हैं। उनको वस्त्र-पात्र लेने का विकल्प होता नहीं। मुनि को वह होता ही नहीं,

मुनि की अवस्था ऐसी है। समझ में आया ?

मुनिपना जिसको हुआ उसकी बाह्य में नग्न अवस्था हो जाती है। वस्त्र-पात्र रहे और मुनि हो जाये, ऐसा कभी होता नहीं। समझ में आया ? अन्तर में जिसको तीन कषाय का अभाव करके अन्तर शांति का अनुभव, आनन्द का चारित्र हुआ ऐसे मुनि को पंच महाव्रत अहिंसा, सत्य व्रत पूरे होते हैं और अठ्ठाईस मूलगुण (होते हैं)। एकबार आहार लेना, छह आवश्यक आदि ऐसे अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प होता है। उस व्यवहार को सकलचारित्र कहते हैं। अन्दर स्थिरता हुई है, वह यथार्थ चारित्र है; विकल्प उठते हैं, वह व्यवहारचारित्र है। पंच महाव्रत है न ? विकल्प उठते हैं वह व्यवहारचारित्र है। लेकिन उस व्यवहारचारित्र के साथ अन्दर निश्चयचारित्र है। स्वरूप की दृष्टि, ज्ञानपूर्वक स्थिरता तीन कषाय का अभाव है तो उसे व्यवहारचारित्र कहते हैं। समझ में आया ? आहा..हा...!

वह कहते हैं, देखो ! सकलचारित्र अथवा सर्वदेश अथवा महाचारित्र अथवा सूक्ष्म चारित्र। समझे ? पहले में स्थूलचारित्र कहा न ? क्षावक को स्थूलचारित्र है। मुनि अर्थात् परमेष्ठी अवस्था। ओ..हो..हो...! जिसकी बाह्य दिगम्बर अवस्था, एक वस्त्र का धागा भी नहीं होता। ऐसी आनन्द की मूर्ति। कमण्डल निमित्तरूप से उपकरण होता है। दूसरा (कुछ) होता नहीं। एक पुस्तक। आनन्दघन (में झूलते हैं)। 'कुन्दकुन्दाचार्य', 'अमृतचन्द्राचार्य', 'पूज्यपादस्वामी' इत्यादि महासंत हुए वे सकल चारित्रवंत थे। समझ में आया ?

'उनमें सकल चारित्र का पालन मुनिराज करते हैं...' श्रावक को यह भूमिका होती नहीं। **'देश चारित्र का पालन श्रावक करते हैं।'** पंच अणुव्रत का पालन श्रावक को होता है। पंच महाव्रत का पालन तो मुनि को होता है। **'इस चौथी ढाल में देशचारित्र का वर्णन किया गया है।'** इस चौथी ढाल में। **'सकल चारित्र का वर्णन छठवीं ढाल में किया जायेगा।'** अन्तिम में (करेंगे)।

'त्रसजीवों की संकल्पी हिंसा का सर्वथा त्याग करके...' देखो ! संकल्पी हिंसा। मैं इस प्राणी को मार दूँ। ऐसी हिंसा का भाव पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक को होता नहीं। **'निष्प्रयोजन स्थावर जीवों का घात न करना, सो अहिंसा अणुव्रत है।'** प्रयोजन बिना...

श्रावक है, नीचे कहेंगे, देखो ! टिप्पणी है न नीचे ? नीचे टिप्पणी है। '**(१) अहिंसाणुव्रत का धारण करनेवाला जीव 'यह जव घात करने योग्य है, मैं इसे मारुं' इस प्रकार संकल्पसहित किसी त्रसजीव की संकल्पी हिंसा नहीं करता;...**' एक मक्खी को भी संकल्प से मारना (कि), मैं मार दूँ, ऐसा भाव श्रावक को नहीं होता। एक मक्खी भी। मुझे ऊलटी नहीं होती, ऊलटी। बहुत दु:ख रहा है तो इस मक्खी को मार दूँ। ऐसे नहीं होता। संकल्पी हिंसा का त्याग है। पंचम गुणस्थान प्रकट हुआ है। शांति... शांति... शांति... अन्दर बहुत शांति (है), दो कषाय के अभाव (पूर्वक) शांति वर्तती है।

कहते हैं कि, '**इस प्रकार संकल्पसहित किसी त्रसजीव की संकल्पी हिंसा नहीं करता; किन्तु इस व्रत का धारी आरम्भी,...**' आरंभी हिंसा है, उसका त्याग नहीं। खाना बनाते हैं, चलते हैं आदिआरम्भ होता है न ? (वह) आरम्भी। 'उद्योगिनी...' व्यापार। पंचम गुणस्थान में व्यापार होता है। जहाज का व्यापार होता है, धन्धे का व्यापार होता है। उस हिंसा का त्याग नहीं है। वह तो है न ? पंचम गुणस्थान में इतना परिणाम तो (होता है)। '**उद्योगिनी और विरोधीनी हिंसा का त्याग नहीं होता।**' विरोधीनी हिंसा का त्यागी नहीं। राजा हो और लड़ाई करने आये तो अपनी रक्षा के लिये सामने लड़ने का भाव होता है। मानते हैं कि, यह पाप है। विरोधीनी हिंसा भी पाप है, उद्योगिनी हिंसा भी पाप है, आरम्भी हिंसा भी पाप है परन्तु छोड़ नहीं सकते। पंचम गुणस्थान में छोड़ नहीं सकते। वह छूट जाये तो अन्दर में मुनिपना हो जाये। समझ में आया ? संकल्पी हिंसा का त्याग करते हैं और त्रस का स्थावर की बिना कारण हिंसा नहीं करते।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- उसे कहाँ है ? त्रस की हिंसा नहीं है। संकल्प-विकल्प नहीं है। तीन ज्ञान के धनी, कुछ तो जातिस्मरणज्ञानी हैं। वे क्या कहते हैं, समझ में आया ? अढाई द्वीप के बाहर असंख्य श्रावक हैं। यह अढाई द्विप का मनुष्य क्षेत्र है न ? अडाई द्वीप में मनुष्यक्षेत्र (है)। उसके बाहर असंख्य द्वीप, समुद्र में, स्वयंभूरमण समुद्र में सच्चे समकिती श्रावक हैं। है न, शास्त्र में पाठ है न ? समकिती अणुव्रतधारी। असंख्य मृग है, मच्छी है, मगर है, कुत्ता है, सिंह

है, वाघ है, ऐसे असंख्य हैं। सिद्धान्त में पाठ है, 'धवल' में पाठ है। भगवान ने केवलज्ञान में देखा है कि, अढाई द्वीप के बाहर (ऐसे जीव है)। अढाई द्वीप में तोबहुत थोडे श्रावक हैं। मनुष्य थोड़े हैं न ? और बाहर में असंख्य है। एक समकिती और असंख्याता मिथ्यादृष्टि। तो भी असंख्य समकिती और असंख्य श्रावक पंचम गुणस्थानवाले बाहर में हैं। हजार-हजार योजन का शरीर है। चार हजार गाउ का मच्छ का शरीर (है)। पंचम गुणस्थानवाला है, कोई अवधिज्ञानी (हैं)। तीन ज्ञान के धनी हैं। तो भी वे त्रस की हिंसा करते नहीं। संकल्प से त्रस की हिंसा नहीं (करते)। पानी में कोई त्रस आ जाये तो (अलग बात है)। वहाँ स्थावर तो हैं, स्थावर की हिंसा है।

मुमुक्षु :- ... ये चलता है ना ?

उत्तर :- लेकिन वह तो प्रयोजन का है न। बिना प्रयोजन की हिंसा कहाँ हुई ? चलता है (तो) स्थावर जीव की हिंसा होती है। समझ में आया ? जल में है न ? पंचम गुणस्थान है। चलता है, हजार योजन चले। मच्छी, कितना लंबा देह ! पानी बहुत है। तिर्यंच भी ऐसे होते हैं। यह बात क्या चलती है ? तिर्यंच पंचम गुणस्थानवाले होते हैं। भगवान तीर्थंकरदेव ने कहा है। ऐसे बहुत असंख्य बाहर पड़े हैं।

देखो ना, हाथी ! 'त्रिलोकमंडन' हाथी। 'त्रिलोकमंडन' था न ? जो 'रावण' का हाथी था। जब 'रामचंद्रजी' लाये, वह 'भरत' का मित्र था। 'भरत' दीक्षा लेते हैं न, देखो, 'भरत' दीक्षा लेते हैं। देखो ! चारों बैठकर जाते हैं। हाथी पर 'भरत', 'राम', 'लक्ष्मण', 'शत्रुघ्न' जाते हैं। 'भरत' दिक्षा लेते हैं, वह तो पूर्व का मित्र था। जातिस्मरण हो गया, तिर्यंच को जातिस्मरण हो गया। अ..हो..! मैं तो 'भरत' का मित्र था। अरे..! ये दीक्षा (ले रहा है), मैं तो मनुष्यपना हार गया। वैराग्य हो गया, सम्यग्दर्शन हो गया। समझ में आया ? ये तो यहाँ अढाई द्वीप में है। अढाई द्वीप के बाहर असंख्य हैं। असंख्य ! अरबों, अरबों, समकिती श्रावक। मिथ्यादृष्टि उनसे असंख्यातगुने हैं।

मिथ्यादृष्टि तिर्यंच तो असंख्यगुना बाहर में हैं परन्तु समकिती भी असंख्य हैं। वह चले तब, पूंछ हिलाये तो स्थावर जीव बहुत मर जाते हैं। परन्तु वह तो शरीर की गति का प्रयोजन

है। हिंसा लगती है, हिंसा लगती है लेकिन उस हिंसा का त्याग उसे नहीं है। समझ में आया ? वह (क्रिया) बिना प्रयोजन नहीं है। शरीर चलता है, वहाँ पानी में लील-फूग भी हैं। लील-फूग समझे ? (-काई)।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- सामायिक करे, प्रोषध करे। पूछो न, भाई ! सामायिक का अर्थ अन्तर अखंडानन्द भगवान, उसमें समता-वीतरागी समता में स्थिर हो जाता है, उसका नाम सामायिक। वहाँ कुछ बिछाने का नहीं है कि, बिछा ले। कपड़ा, मकान नहीं है, वह तो जल में है और कितने पशु स्थल में पड़े हैं। सिंह, वाघ समकिती श्रावक (हैं)। अन्तर आनन्दमूर्ति का अनुभव सम्यग्दर्शन में हुआ है उसमें लीन हो जाते हैं। लीन... समता... समता.. समतारस का झरना अन्दर सामायिक में पीते हैं। प्रौषध में आत्मा का पोषण करते हैं। समकित में शुद्ध आनन्दकन्द की दृष्टि, अनुभव हुआ है, बाद में उसमें एकाग्र होते हैं, पोषण करते हैं, उसका नाम प्रौषध। तिर्यंच भी सामायिक और प्रौषध करते हैं। आहा..हा... ! आत्मा है न ! वह आत्मा की क्रिया है। जड़ की जड़ की क्रिया है। जड़ में क्या है ? समझ में आया ? कठिन बात, भाई !

यहाँ तो इतना कहते हैं कि, श्रावक पंचम गुणस्थान में जहाँ अपने स्वरूप का अनुभव और दृष्टि हुई है, बाद में जब पाँच अणुव्रत ग्रहण करते हैं, उसमें त्रसजीव की संकल्पी हिंसा का त्याग (है)। उद्योगिनी, आरम्भिनी और विरोधीनी हिंसा का त्याग नहीं होता। कोई विरोध करता हो तो ऐसा भाव आवे। माने, समझे कि पाप है। विरोध करना भी है तो पाप। व्यापार करने का भाव होता है, वह है तो पाप परन्तु उस पाप का त्याग पंचम गुणस्थान में नहीं हो सकता। समझ में आया ? आता है, उसे उतना राग है, अभी मोह है। स्त्री हो, श्रावक हो तो खाना बनाना पड़ता है। स्त्री पंचम गुणस्थान में आत्मध्यानी, ज्ञानी स्त्री हो पंचम गुणस्थान में, उसे भोजन करना पड़े, जल गरम करना पड़े तो उसमें जीव कि हिंसा होती है, कोई त्रस भी मरते हैं। (लेकिन) संकल्प से मारते नहीं।

मुमुक्षु :- उसे जलाये नहीं। छांटकर निकाल दे। लकड़ी हो उस पर रख दे। समझे न ?

क्या कहते हैं ? चिमनी गरम करके उस पर नहीं डालते ? चिमनी होती है न चिमनी ? सीसे की गरम-गरम चीमनी होती है ना ? कितने तो ऐसे होते हैं कि, खटमल हो उस पर गरम-गरम फिराये तो मर जो। प्राण जाये तो भी श्रावक करते ही नहीं। त्रसजीव को ऐसा नहीं करे। समझ में आया ? श्रावक है, करुणावंत है, उसमें दया है। ऐसे त्रस की हिंसा तो करते नहीं। जूँ होती है न ? जूं। जूं को क्या कहते हैं ? जूं कहते हैं न ? जूं निकालकर ऐसा करते हैं।

मुमुक्षु :- विरोधिनी है।

उत्तर :- वह विरोधीनी नहीं। ठीक कहते हैं। विरोधीनी नहीं है, वह तो बेचारी साधारण प्राणी है। कुछ औरतें जूं निकालती हैं, काम करती जाये। जैन में भी होते हैं, देखे हैं। नामधारी जैन। नामधारी जैन, भाव जैन क्या ? समझ में आया ? हमारे यहाँ महाजन लोग हैं, एक बाई कहने लगी, उस जूं को मारने का त्याग मुझसे नहीं हो सकता। जूं निकले तो तुरंत मार डालती हूँ। (नहीं) मारे तो कहाँ जाये ? (छोड दे तो) और किसी को काटे। आहा..हा... ! श्रावक को ऐसी हिंसा का भाव होता ही नहीं। बिलकुल नहीं होता। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान का भाव है। मैं सिद्ध समान (हूँ), सब सिद्ध समान आत्मा हैं। सब आत्मा ज्ञानमय भगवान है। समझ में आया ? सब जीव भगवान परमात्मस्वरूप हैं, पर्याय में भूल है तो मिथ्यात्व आदि है, तो भटकते हैं। समझ में आया ? आहा..हा... ! समताभाव सब जीव है। कोई विरोधी दुश्मन है नहीं। समकिती किसी को दुश्मन मानते नहीं। कोई लड़ाई करने को आवे तो मारने का भाव आता है, परन्तु हमारा दुश्मन है -ऐसा नहीं मानते। आहा..हा... ! समझ में आया ?

व्रतधारी श्रावक **'आरम्भी, उद्योगिनी तथा विरोधीनी हिंसा का त्याग नहीं होता।'** संकल्प हिंसा का त्यागी हो सकता है। **'दूसरे के प्राणों को घातक, कठोर तथा निंद्यनीय वचन न बोलना (तथा दूसरों से न बुलवाना, न अनुमोदना सो सत्य-अणुव्रत है)।'** देखो ! श्रावकपना अर्थात्... ओ..हो..हो..! जहाँ एकावतारी एकभवतारी सर्वार्थसिद्धि देव, एकभवतारी, एकभवतारी है न ? एक भव करके मुक्ति में जायेंगे। उससे भी ये (श्रावक) गुण में बढ गया। पंचम गुणस्थान (है)। गुण में बढ़ गया। बाहर से मात्र व्रत लिये ऐसा नहीं। अन्तर शांति और सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित कहा न ? **'सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरि दिढ चारित**

लीजै' आत्मा का अनुभव हुआ है, आनन्दकन्द शुद्ध निर्विकल्प, निर्विकल्प आनन्द का अनुभव हुआ है, निर्विकल्प आत्मा की अन्तर सम्यक् दृष्टि हुई है, बाद में स्वरूप की स्थिरता में ऐसे पाँच अणुव्रत का भाव होता है। आहा..हा...! ऐसी बात है, भाई ! समझ में आया ? वह एक श्लोक हुआ। दूसरा श्लोक।

अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रहपरिमाणाणुव्रत तथा दिग्व्रत का लक्षण

जल-मृतिका विन और नाहिं कछु गहै अदत्ता;
निज वनिता विन सकल नारिसों रहै विरत्ता।
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै;
दश दिश गमन प्रमाण ठान, तसु सीम न नाखै॥११॥

अन्वयार्थ :- (जल-मृतिका विन) पानी और मिट्टी के अतिरिक्त (और कछु) अन्य कोई वस्तु (अदत्ता) बिना दिये (नाहिं) नहीं (ग्रहे) लेना (उसे अचौर्याणुव्रत कहते हैं) (निज) अपनी (वनिता विन) स्त्री के अतिरिक्त (सकल नारि सौं) अन्य सर्व स्त्रियों से (विरत्ता) विरक्त (रहे) रहना (वह ब्रह्मचर्याणुव्रत है) (अपनी) अपनी (शक्ति विचार) शक्ति का विचार करके (परिग्रह) परिग्रह (थोरो) मर्यादित (राखै) रखना (सो परिग्रहपरिमाणाणु व्रत है)। (दस दिश) दस दिशाओं में (गमन) जाने-आने की (प्रमाण) मर्यादा (ठान) रखकर (तसु) उस (सीम) सीमा का (न नाखै) उल्लंघन न करना (सो दिग्व्रत है)।

भावार्थ :- जन समुदाय के लिये जहाँ रोक न हो तथा किसी विशेष व्यक्ति का स्वामित्व न हो - ऐसी पानी तथा मिट्टी जैसी वस्तु के अतिरिक्त परायी वस्तु (जिस पर अपना स्वामित्व न हो) उसके स्वामी के दिये बिना न लेना (तथा उठाकर दूसरे को न देना) उसे अचौर्याणुव्रत कहते हैं। अपनी विवाहित स्त्री के सिवा अन्य सर्व स्त्रियों से विरक्त रहना सो ब्रह्मचर्याणुव्रत है। (पुरुष को चाहिए कि अन्य स्त्रियों को माता, बहिन और पुत्री समान

माने, तथा स्त्री को चाहिए कि अपनी स्वामी के अतिरिक्त अन्य पुरुषों को पिता, भाई तथा पुत्र समान समझे)।

अपनी शक्ति और योग्यता का ध्यान रखकर जीवनपर्यंत के लिये धन-धान्यादि बाह्य-परिग्रह का परिमाण (मर्यादा) बांधकर उससे अधिक की इच्छा न करे उसे *परिग्रहपरिमाणाणुव्रत कहते हैं। दसों दिशाओं में जाने-आने की मर्यादा निश्चित करके जीवनपर्यंत उसका उल्लंघन न करना सो दिग्व्रत है। दिशाओं की मर्यादा निश्चित की जाती है, इसलिए उसे दिग्व्रत कहा जाता है।

दूसरे में '**अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रहपरिमाणाणुव्रत तथा दिग्व्रत का लक्षण।**' चार की (व्याख्या कहेंगे)। दो की पहले आ गई, इसमें चार की (व्याख्या कहेंगे)।

जल-मृतिका विन और नाहिं कछु गहै अदत्ता;
निज वनिता विन सकल नारिसों रहै विरत्ता।
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै;
दश दिश गमन प्रमाण ठान, तसु सीम न नाखै।।११।।

'छहढाला' में थोड़े में बहुत भर दिया है। गागर में सागर भर दिया है। दर्शन का

---

* टिप्पणी :- (१) अहिंसाणुव्रत का धारण करनेवाला जीव 'यह जीव घात करने योग्य है, मैं इसे मारूं' इस प्रकार संकल्प सहित किसी त्रस जीवकी संकल्पी हिंसा नहीं करता; किन्तु इस व्रत का धारी आरम्भी, उद्योगिनी तथा विरोधीनी हिंसा का त्यागी नहीं होता।

(२) प्रमाद और कषाय में युक्त होनेसे जहाँ प्राणघात किया जाता है वही हिंसा का दोष लगता है; जहाँ वैसा कारण नहीं है वहाँ प्राणघात होने पर भी हिंसाका दोष नहीं लगता। जिसप्रकार-प्रमादरहित मुनि गमन करते हैं; वैद्य डोक्टर करुणाबुद्धिपूर्वक रोगी का उपचार करते हैं; वहाँ सामनेवाले का प्राणघात होने पर भी हिंसा का दोष नहीं है।

(३) निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक पहले दो कषायों का अभाव हुआ हो उस जीव को सच्चे अणुव्रत होते हैं। जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन न हो उसके व्रत को सर्वज्ञदेवने बालव्रत (अज्ञान) कहा है।

अधिकार भी इतना, सम्यग्ज्ञान का इतना, चारित्र का (भी इतना)। सब थोड़ें सारा सार भर दिया है, परन्तु लोग विचार नहीं करते, तोते की भाँति रट लेते हैं, परन्तु उसका भाव क्या है – (वह विचारते नहीं) इसीलिये तो उन्हों ने कहा कि, '**लाख बात की बात**' शुभाशुभ विकल्प से, राग से भिन्न आत्मा है ऐसा दृष्टि, अनुभव पहले करो। उसके बिना सम्यग्दर्शन, ज्ञान होता नहीं और सम्यग्दर्शन, ज्ञान बिना तेरा श्रावकपना, मुनिपना कुछ होता ही नहीं, बिना एक के सब शून्य हैं। शून्य है, एक बिना शून्य है।

पहले आत्मा का सम्यग्दर्शन ऐसा दृढ़ प्रकट करो – मैं शुद्ध आनन्दकन्द ही हूँ। पुण्य-पाप का राग होता है, वह मेरी चीज़ नहीं, वह तो आस्रवतत्त्व है। शरीर, वाणी, मन जड़ की क्रिया का कर्ता मैं नहीं। क्योंकि जड़ पदार्थ की पर्याय, द्रव्य-गुण-पर्याय सहित जड़ है। प्रत्येक परमाणु अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से हैं। द्रव्य त्रिकाली शक्ति का पिण्ड, गुण शक्ति और पर्याय चलती है, वह उसकी है, मेरी नहीं। वह मेरे से होती नहीं। आहा..हा...! समझ में आया ? ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक, जहाँ श्रावक के अणुव्रत है, वहाँ, तो अलौकिक शांति है। पंचम गुणस्थान नरक में तो होता नहीं। देव में होता नहीं, एक पशु में होता है, पंचम गुणस्थान पशु में... समझ में आया ? तिर्यंच में पंचम गुणस्थान होता है, उसको छठ्ठा नहीं होता। मनुष्य में चौथा होता है, पाँचवा होता है और छठ्ठा भी होता है। तीन की भूमिका अनुभवसहित होती है। समझ में आया ?

'**(जल-मृतिका बिन) पानी और मिट्टी के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु बिना दिये नहीं लेना...**' अचौर्यव्रत। समझे न ? नीचे टिप्पणी है न ? थोड़ी टिप्पणी (है)। '**प्रमाद और कषाय में युक्त होने से जहाँ प्राणघात किया जाता है वहीं हिंसा का दोष लगता है;**' '**प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा**' ऐसा 'तत्त्वार्थ सूत्र' (अधिकार-७, सूत्र-१३) में हैं न ? भगवान 'उमास्वामी' 'तत्त्वार्थसूत्र' में 'मोक्षशास्त्र' में फरमाते हैं कि, '**प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा**' प्रमत्तयोग से हिंसा का भाव हो, उसका नाम हिंसा कहते हैं। '**प्रमाद और कषाय में युक्त होने से जहाँ प्राणघात किया जाता है, वहीं हिंसा का दोष लगात है; जहाँ वैसा कारण नहीं है वहाँ प्राणघात होने पर भी हिंसा का दोष नहीं लगता।**' मारने का प्रमाद नहीं, कषाय नहीं (है)। मर गया। मुनि का दृष्टान्त देते हैं, देखो !

'**जिसप्रकार-प्रमाद रहित मुनि गमन करते हैं...**' मुनि हैं न ? प्रमादरहित गमन करते हैं। आत्मा का ध्यान, ज्ञान, आनन्द, शांति है। प्रमाद न आ जाये ऐसे चलते हैं। (फिर भी) कोई जीव आ गया तो उसका पाप उनको नहीं लगता। भाव नहीं है, त्रस आ गया। कोई उड़ता प्राणी आ गया, मर जाये। (लेकिन) भाव नहीं है, प्रमादभाव नहीं हैतो वह त्रस मरे तो उसका पाप नहीं है। '**वैद्य डॉक्टर करुणाबुद्धिपूर्वक रोगों का उपचार करते हैं; वहाँ सामनेवाले का प्राणघात होने पर भी हिंसा का दोष नहीं है।**' मारने का भाव है नहीं। करुणाबुद्धि (है)। उसे हिंसा का पाप नहीं लगता।

'**(३) निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक...**' नीचे है टिप्पणी में ? निश्चयसम्यग्दर्शन, हाँ ! चौथे गुणस्थान में निश्चयसम्यग्दर्शन होता है। कोई कहे कि, व्यवहार सम्यग्दर्शन चौथे, पांचवे, छठ्ठे है, ऐसा नहीं। वह तो राग है। व्यवहार तो पराश्रति है, निश्चय स्वआश्रित है। समझ में आया ? निश्चयसम्यग्दर्शन, अपना शुद्ध भगवान आत्मा के आश्रय से अन्तर अनुभव में प्रतीत होना, उसका नाम सच्चा-निश्चयसम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान से होता है। समझ में आया ? और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा वह श्रद्धा, का विकल्प है, वह व्यवहार समकित है। वह व्यवहार समकित है। व्यवहार समकित कोई समकित है नहीं, परन्तु निश्चयसम्यग्दर्शन हुआ, अपने शुद्ध स्वरूप की अनुभव प्रतीति (हुई) तो साथ में नौं तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र, सच्चे अरिहंत परमेश्वर, गुरु निर्ग्रंथ चारित्रवंत, समझ में आया ? परम दिगम्बर संत महा आत्मध्यानी, ज्ञानी और भगवान सर्वज्ञ ने कहे हुए अनेकान्तमय शास्त्र। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहे हुए अनेकांतमय शास्त्र। इन तीनों की श्रद्धा शुभराग है। उसको व्यवहार समकित कहने में आता है। वर्तमान में बहुत गडबड चलती है। चौथे, पाँचवें गुणस्थान में व्यवहार समकित होता है। आठवें से निश्चय समकित होता है, ऐसा (है) नहीं। निश्चय समकित चौथे से ही होता है। स्वआश्रय (से) होता है।

मुमुक्षु :- ... निर्मल पर्याय...

उत्तर :- सम्यग्दर्शन तो श्रद्धागुण की निर्मल पर्याय है। व्यवहार समकित तो शुभराग है, परआश्रित विकल्प उठता है। समझ में आया ? वर्तमान में बहुत गड़बड़ है। देव-गुरु-शास्त्र

की श्रद्धा करो। नौ तत्त्व की भेद श्रद्धा करो-ऐसा नहीं।

मुमुक्षु :- परद्रव्य तैं भिन्न आप (निज) में रुचि...

उत्तर :- परद्रव्य से भिन्न। भिन्न है। ऐसी रुचि, परद्रव्य से भिन्न, परद्रव्य से भिन्न अपने स्वरूप की रुचि। है न वह ? कौन-सा श्लोक है ? पन्ना ५६। '**परद्रव्यनतैं भिन्न आपमें रुचि, समकित भला है;**' देखो ! '**आपरूपको जानपनों सो सम्यग्ग्यान कला है।**' आपना ज्ञान। शास्त्र ज्ञान तो पर-ज्ञान है। देखो ! भाषा कितनी ली है ! उन्हों ने पहले से लिया है। समझ में आया ? यहाँ (टेप) में सब आ गया है, सब व्याख्यान हो गया है, उत्तर आ गया है। चौथी ढाल चलती है न ? सब चल गया।

'**परद्रव्यन्तैं भिन्न...**' परद्रव्य की क्या श्रद्धा ? उसकी ... क्या है ? देव-शास्त्र-गुरु परद्रव्य है। शरीर परद्रव्य है, कर्म परद्रव्य है, उससे भिन्न (है)। वास्तव में पुण्य-पाप का भाव भी उससे पर है। उससे भिन्न अपना सम्यक् भला है। वह स्वरूचि निश्चय समकित है; और '**आपरूपको जानपनों,...**' देखो ! भाषा देखो ! 'छहढाला' (है)। '**आपरूपको... आपरुप**' शुद्ध ज्ञानानन्द आपरुप है। उसका ज्ञान। शास्त्रज्ञान तो व्यवहार ज्ञान हुआ। होता है, विकल्प होता है। वह निश्चय नहीं, निश्चय तो अपने स्वरूप का ज्ञान, वह ज्ञान है। है न भैया उसमें ? भैया ! देखो ! तीसरा शब्द क्या है ?'**आपरूपमें लीन रहे थिर, सम्यग्चारित सोई;**' अणुव्रतादि विकल्प तो व्यवहार है। '**आपरूपमें लीन रहे थिर, सम्यग्चारित सोई;**' भगवान आत्मा... !

मुमुक्षु :- अन्तर्मुहूर्त लीन रहे तो केवलज्ञान हो जाए।

उत्तर :- वह बाद में। अन्दर स्थिरता होती है न ? स्वरूप में स्थिरता होती है, उसका नाम चारित्र है, ऐसा कहते हैं। चारित्र कोई बाहर की चीज़ नहीं है। पंच महाव्रतादि परिणाम तो व्यवहारचारित्र है। स्वरूप में स्थिर होना, ठरना, छठ्ठे गुणस्थान में तीन कषाय रहित स्थिर हो, उसका नाम चारित्र है। आहा..हा... ! बहुत गडबड हो गई, इतनी गड़बड़ हो गई। बहार में वह सब सच्चा हो गया। निश्चय बिना का व्यवहार मात्र हो गया।

'**अब व्यवहारमोक्षमार्ग सुनिये, हेतु नियतको होई।**' निश्चय में ऐसा एक व्यवहार

निमित्त है। निमित्त (है)। व्यवहार समकित, व्यवहार ज्ञान, व्यवहारचारित्र निमित्त है, हेतु है न ? हेतु अर्थात् निमित्त। समझ में आया ?

११० पन्ने पर तीसरी टिप्पणी चलती है। '**पहले दो कषायों का अभाव हुआ हो, उस जीव को सच्चे अणुव्रत होते हैं। जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन न हो, उसके व्रत को सर्वज्ञदेव ने बालव्रत (अज्ञानव्रत) कहा है।**' आत्मा का परद्रव्य से भिन्न स्वरूप का भान नहीं और स्वरूप की प्रतीति-अंतर निर्विकल्प श्रद्धा नहीं (है) तो इनके बिना व्रतादि धारण करे (वह) अज्ञानव्रत हैं। आहा..हा... ! समझ में आया ? मास-मास खमण के उपवास करे। बालतप है। सर्वज्ञ ने 'समयसार' में कहा है, '...' सर्वज्ञ उसे बालतप कहते हैं।

आत्मा अपना निज स्वरूप बिलकुल शुद्ध आनन्द (है), ऐसी अंतर्मुख दृष्टि का अनुभव हुए बिना, उसका ज्ञान हुए बिना रमना किसमें ? अन्दर में रमना वह चारित्र है। परन्तु स्वरूप की दृष्टि और ज्ञान तो हुआ नहीं, ठरना किसमें ? चारित्र का अर्थ रमना, लीन होना, चरना। चारित्र अर्थात् चरना, अन्दर में रमना। तो दर्शन-ज्ञान नहीं है तो रमना कहाँ से आया ? समझ में आया ? जगत को बहुत कठिन लगता है। (फिर कहते हैं), एकान्त... एकान्त... (है)। अरे.. भगवान ! सुन तो सही।

कहते हैं कि, '**निश्चयसम्यग्दर्शन न हो उसके व्रत को सर्वज्ञदेव ने बालव्रत (अज्ञानव्रत) कहा है।**' अब उसका अर्थ, ग्यारहवीं गाथा का (अर्थ)। श्रावक पंचम गुणस्थानवाला... ११० पन्ने पर। '**पानी और मिट्टी के अतिरिक्त...**' पंचम गुणस्थानवाला श्रावक पानी और मिट्टी के अलावा '**अन्य कोई वस्तु बिना दिये नहीं लेना...**' पानी तो नदी में चले ऐसा पानी, मिट्टी। वह अचौर्य अणुव्रत है। श्रावक का पंचम गुणस्थान का तीसरा अणुव्रत है।

'**अपनी (वनिता बिन)...**' देखो ! अपनी '**स्त्री के अतिरिक्त अन्य सर्व स्त्रियों से विरक्त रहना...**' यहाँ तो पंचम गुणस्थानवाले को परस्त्री नहीं होती, ऐसा कहते हैं। नहीं होती है। पाप मानते हैं। स्वस्त्री के विषय में भी मानते हैं पाप, परन्तु छोड़ नहीं सकते। समझ में आया ? आ..हा... ! पाप तो पाप ही है न ! जितना स्थावर हिंसा का भाव, स्त्री के विषय का भाव... भाव भी है तो पाप। परन्तु उस पाप का त्याग पंचम गुणस्थान में हो नहीं सकता।

श्रावक है न ! उस पाप का त्याग, मुनि आत्मा के ध्यान में विशेष स्थिरता बढ जाये, उनको स्वस्त्री का त्याग हो जाता है। समझ में आया ?

'**अन्य सर्व स्त्रियों से विरक्त रहना...**' सर्व स्त्री। पशु की स्त्री हो, देवांगना हो कि दूसरी मनुष्यणी हो। पंचम गुणस्थान में देवांगना आकर यदि लालच करे (तो भी नहीं डिगता।) आत्मा की शांति प्रकट हुई है, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया है। पंचम गुणस्थान में चौथे गुणस्थान से (अधिक) आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया है। पंचम गुणस्थान में अतीन्द्रिय आनन्द का तो बहुत स्वाद है। ... स्व-स्त्री का राग आता है, उसे हम नहीं छोड सकते। दूसरे की मा-बहन, बेटी (देखते हैं)।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- वह कुछ नहीं, वह अलग व्यवहार है, उसका व्यवहार अलग है। समझमें आता है ? यहाँ तो मनुष्य के व्यवहार की बात चल रही है।

'**अन्य सर्व स्त्रीयों से विरक्त रहना (वह ब्रह्मचर्याणुव्रत है)।**' अब परिग्रह का त्याग। पाँचवे गुणस्थान में आत्मज्ञानी को स्वरूप में स्थिर होने की स्थिति में ऐसा शुभभाव होता है। '**अपनी शक्ति का विचार कर...**' देखो ! शक्ति विचार, हाँ ! अपनी शक्ति का विचार करके परिग्रह का माप करे। आता है न ? भाई ! तीर्थंकरगोत्र में... शक्ति तप त्याग। सोलह बोल आते हैं न ? तीर्थंकरगोत्र का नहीं (आता) ? क्या कहते हैं ? षोडशकारणभावना। षोडशकारणभावना में शक्ति तप त्याग। अपनी शक्ति विचारे कि, हमारी इतनी शक्ति है, विशेष नहीं। एकदम सब ले ले, हठ ले ले ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- परंपरा ले।

उत्तर :- परंपरा ले क्या करे ? (ऐसा कहे हैं) व्रत की हवा चली है, व्रत की बाढ चली है। ऐसे व्रत ले लेते हैं ?

मुमुक्षुः- ऐसे व्रत ले तो आकुलता हो जाय।

उत्तर :- तो आकुलता हो जाये। ऐसी बात है, ऐसी बात है। अपनी शक्ति विचारे कि,

मुझे तो त्याग करना है (लेकिन) इतना परिग्रह छोड़ सकता हूँ, विशेष नहीं छोड़ सकता। दुनिया एकदम छोड़ दे और कर दे और स्वयं हठ में जुड जाये, ऐसा नहीं। अपनी शक्ति की मर्यादा देखे, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव कितना है, मेरा सामर्थ्य कितना है, मैं समता कितनी रख सकता हूँ, उतना त्याग हो तो भी मुझे आकुलता न हो, (उसके अनुरूप) परिग्रह का परिणाम करे।

मुमुक्षु :- संभाल सकता है।

उत्तर :- कौन संभाल सकता है ? धूल।... वह तो सम्यग्दर्शन में मानते हैं कि, एक पाई भी मैं रख नहीं सकता, वह तो जड़ है। परपदार्थ की मैं रक्षा करता हूँ या व्याज उत्पन्न करके व्यवस्था कर सकता हूँ वह बात तो मानते ही नहीं। वह तो मिथ्यादृष्टि माने कि, जड़ की अवस्था मैं कर सकता हूँ। वह तो है ही नहीं। परन्तु पर के त्याग में मेरा राग (घटा) इतना त्याग करता हूँ कि, मेरी मर्यादा में इतना परिमाण कर सकता हूँ, विशेष नहीं। इतना चारित्र में राग का अभाव करते हैं। पर के एक रजकण की क्रिया भी कर सकता हूँ, ऐसा माने तो परद्रव्य की क्रिया करनेवाला कर्ता मिथ्यादृष्ट हुआ। समझ में आया ?

जैसे ईश्वर कर्ता परद्रव्य का, जगत का कर्ता है, ऐसा कहते हैं, वैसे यह जैन नाम धारण करके जड़ की पर्याय (मैं करता हूँ ऐसा मानता है)। परमाणु स्वतंत्र पदार्थ है। एक-एक परमाणुमें अनन्त गुण है। अनन्त गुण की एक समय में अनन्ती पर्याय होती है। अनन्ती पर्याय उसके परमाणु का कार्य है। वह कार्य क्या आत्मा कर सके ? समझ में आया ? सम्यग्दर्शन हुआ तब से उसे भान हुआ है। नहीं, जगत के सब पदार्थ अपनी पर्याय प्रवाह से चलते हैं, मैं उसका कर्ता-हर्ता नहीं। आहा..हा... !

मुमुक्षु :- ... माप करते है।

उत्तर :- नहीं, नहीं। पहले से ही व्रत लेते समय माप करते हैं कि, मैं इतना त्याग कर सकता हूँ। मुझे पाँच हजार या दस हजार हो, इतनी मेरी ममता छूटती नहीं। इतना परिमाण करे। एकदम छोड़कर कुछ नहीं रखे और फिर आकुलता उत्पन्न हो, ऐसा नहीं करते। सम्यग्दृष्टि विवेकी है। सम्यग्दर्शन हुआ है, आत्मा का भान (हुआ है), विवेक से काम लेता

है। हठ से काम नहीं लेता। अज्ञानी तो हठ से एकदम (कहता है), छोड दो..! क्या छोडे ? वस्तु कि स्थिति के भान बिना क्या छोड़े ? आग्रह हुआ है, आग्रह में छोड दिया। मैंने ऐसा छोड़ दिया। समझ में आया ?

'**मर्यादित रखना परिग्रहपरिमाणाणुव्रत है। दस दिशाओं में जाने-आने की मर्यादा रखकर...**' दस दिशा में मर्यादा करे। आजीवन। इसमें आजीवन की है।... रोज की आती है। इतनी ममता काम करे। मुझे इतने से बाहर नहीं जाना। पांचसो योजन, हजार योजन... सारी जिंदगी, हाँ !'**आने-जाने की मर्यादा रखकर उस सीमा का उल्लंघन न करना।**' जो मर्यादा बांधी है, उसकी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना। इतनी हद में उसे रहना, ऐसा विकल्प (आता है), उसको छठ्ठा देशव्रत कहते हैं। देखो ! भावार्थ है।

भावार्थ :- '**जन समुदाय के लिये जहाँ रोक न हो तथा किसी विशेष व्यक्ति का स्वामित्व न हो - ऐसी पानी तथा मिट्टी जैसी वस्तु के अतिरिक्त परायी वस्तु (जिस पर अपना स्वामित्व न हो) उसके स्वामी के दिये बिना न लेना...**' स्वामी की आज्ञा बिना न ले। '**(तथा उठाकर दूसरे को न देना)...**' हो किसी की चीज़ और उठाकर किसीको नहीं देता। '**उसे अचौर्याणुव्रत कहते हैं। अपनी विवाहित स्त्री के सिवा अन्य सर्व स्त्रियों से विरक्त रहना, सो ब्रह्मचर्याणुव्रत है। (पुरुष को चाहिए कि अन्य स्त्रियों को माता, बहिन और पुत्री समान माने, तथा स्त्री को चाहिए कि अपने स्वामी के अतिरिक्त अन्य पुरुषों को पिता, भाई तथा पुत्र समान समझे।**' पंचम गुणस्थान... ओ..हो..हो... !

'सीताजी' कहते हैं कि, मेरे स्वप्न में 'राम' के अलावा दूसरा कोई आया हो (तो) अग्नि जला दो। 'रामचंद्रजी' कहते हैं, गिरना पड़ेगा। अग्नि जलती है। अरे..! अग्नि 'राम' के अलावा मेरे संकल्प में, विकल्प में कोई दूसरा पति आया हो तो जला देना। ध्यान रखना, यदि दूसरा पति नहीं आया और जला दिया तो धर्म की इज्जत जायेगी। हमारे हृदय में 'राम' के अलावा दूसरा (कोई) है नहीं। पुण्य था, अनुकूल पुण्य था तो हो गया। (पुण्य न हो तो) जल भी जाये। समझ में आया ? ऐसा ब्रह्मचर्याणुव्रत में स्त्री भी अपने में दृढ़ है। पुरुष भी अपने ब्रह्मचर्यव्रत में (दृढ़ है)।

'सुदर्शन' शेठ नहीं आते हैं ? 'सुदर्शन' शेठ। रानी बुलाती है। (कहेत हैं), माता ! मैं पुरुष नहीं। आहा..हा... ! मैं आत्मा हूँ, मैं श्रावक हूँ। मेरे दूसरी स्त्री न हो, प्राण जाय (तो भी) न हो। आहा.. ! समझ में आया ? ऐसा अन्तर दृष्टि का अनुभव, सम्यग्दर्शन है, इसके अलावा दूसरे कषाय का अभाव (है)। परस्त्री का त्याग, त्याग (है)। सपने में भी हमें परस्त्री न हो। सपने में न हो। समझ में आया ? सज्जन किसको कहे ? आहा..हा... ! आहा..हा... !

'अपनी शक्ति और योग्यता का ध्यान रखकर जीवनपर्यंत के लिये धन-धान्यादि बाह्य-परिग्रह का परिमाण (मर्यादा) बांधकर उससे अदिक की इच्छा न करे उसे परिग्रहपरिमाणाणुव्रत कहते हैं।' उसका नीचे स्पष्टीकरण दिया है। **'निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक प्रथम दो कषायों का अभाव हुआ हो उस जीव को सच्चे अणुव्रत होते हैं। जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन न हो उसके...'** नहीं होते हैं। यह बात पहले आ गई है। **'दसों दिशाओं में आने-जाने की मर्यादा निश्चित करके जीवनपर्यंत...'** आजीवन **'उसका उल्लंघन न करना, सो दिग्व्रत है। दिशाओं की मर्यादा निश्चित की जाती है, इसलिये उसे दिग्व्रत कहा जाता है।'** दिग-दिशा, मर्यादा करे। उसका नाम छठ्ठा व्रत कहते हैं। दूसरा देशावगाशिक व्रत आयेगा।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❋

जिसे आत्माकी सच्ची रूचि जगे उसे चौबीसों घंटे उसीका चिन्तन-घोलन और खटक रहा करती है, नींदमें भी उसी-उसीका रटन चला करता है । अरे ! नरकमें गिरे हुए नारकी भीषण वेदनामे हों, और यदि पूर्वमें सत् सुना हो तो उसका स्मरण कर एकदम अन्तरमें उतर जाते हैं, उन्हें प्रतिकूलता छूती ही नहीं न । और स्वर्गकी अनुकूलतामें हो तो भी अनुकूलताका लक्ष्य छोड़कर अन्तरमें उतर जाते हैं । यहाँ तनिक प्रतिकूलता हो तो अरे ! मेरे ऐसा है और वैसा है, ऐसा कर-करके अनन्त काल गँवाया है । अब तो इनका लक्ष्य छोड़कर अन्तरमें उतर जा न । भाई !! इसके बिना सुखका अन्य कोई मार्ग नहीं । (परमागमसार-३९४)